सह-अस्तित्व : एक वैचारिकी

विकास सिंह
संपादक
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
गाजीपुर

लोकनाथ पब्लिकेशन

प्रथम संस्करण : २०१९
ISBN 978-93-81123-92-8

© प्रकाशक

Email- prcbsbi@gmail.com

lnpvns@gmail.com

Website www.philosophical researchcouncil.com

मुद्रक
फिलोसोफिकल रिसर्च कौंसिल
प्रकाशक
लोकनाथ पब्लिकेशन
लखनपुर भुल्लनपुर
वाराणसी २२११०८

त्रयोदश पुष्प

सह-अस्तित्व का दर्शन एवं महात्मा बुद्ध

डॉ. अमित यादव*

सह-अस्तित्व का शाब्दिक अर्थ है साथ-साथ होना। इस शब्द का निहितार्थ है अन्य के अस्तित्व की स्वीकृति। यह स्वीकार भाव संसार में समृद्धि व विकास को उत्प्रेरित करता है। आज मानवीय विकास के जो अद्भुत सोपान दृष्टिगत होते है वह उसके परस्पर सहकार के कारण ही संभव हुए हैं। मानवीय आवश्यकताओं को यदि हम क्रमवार व्यक्त करें तो उसकी सबसे प्रमुख आवश्यकता है-सुरक्षा। सुरक्षा के उपरांत उदरपूर्ति की आवश्यकता प्रेम की आवश्यकता और स्वनिहित लक्ष्यों को प्राप्त करने की अभिलाषा। प्रारम्भिक मानव जो एकाकी जीवन जीता था, यायावरी था उसने यह महसूस किया कि उसकी सुरक्षा और उदरपूर्ति की आवश्यकता एकाकी जीवन में नहीं बल्कि अन्य के साथ सहकार भाव से पूर्ण होगी। मानव विकास क्रम में परिवार, परिवार आधारित समूहों और कबीलों का अस्तित्व में आना सह-अस्तित्व के विचार की ही मूर्तता थी।

सह-अस्तित्व का यह भाव प्रकृति में पहले से ही विद्यमान रहा है। कहा जाता है कि जिस परितंत्र में जैव-विविधता जितनी अधिक होती है वह उतना ही संतुलित होता है अर्थात् प्रकृति में सह-अस्तित्व का भाव सदैव से रहा है और यही उसके स्वास्थ्य का मानक भी है। सह-अस्तित्व का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जड़ से लेकर जीव जगत, वनस्पति जगत, मानव सभी तक इसका क्षेत्र विस्तृत है। मानव को इन सबमें श्रेष्ठतम स्थिति प्राप्त है क्योंकि उसमें बुद्धिशक्ति, विवेक क्षमता है। अपनी बुद्धिशक्ति से वह तार्किक ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम होता है और विवेकक्षमता से उस ज्ञान के उचित अनुचित का निर्णय करता है। अपनी इन विशिष्टताओं से युक्त होकर मानव ने सह-अस्तित्व को अपने जीवन और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक माना। पुनः अपनी बुद्धिशक्ति से मनुष्य ने कार्य विशेषीकरण या कार्यविभाजन किया। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को परिपूरित करने के लिए उसने अपने लोगों के

---

* असि० प्रोफेसर (दर्शनशास्त्र), राजकीय महिला स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजीपुर।

आठ गुरू[१] धर्म पुरूष बौद्ध भिक्षुओं के समक्ष स्त्री भिक्षु की निम्न स्थिति को दर्शाते हैं तो क्या इसका यह अर्थ निकाला जाए कि महात्मा बुद्ध लैंगिक विभेद के पोषक थे? पुनः एक स्थान पर महात्मा बुद्ध का यह कथन कि "यदि स्त्रियां गृहत्याग कर संघ में प्रवेश न करती तो यह धर्म सहस्र वर्ष तक चिरस्थायी रहता किंतु स्त्री-भिक्षुणियों के प्रवेश उपरांत अब यह धर्म पाँच सौ वर्ष ही जीवित रहेगा।"[२] इस बात का परिचायक है कि स्त्रियों को लेकर महात्मा बुद्ध संकीर्णतावादी थे? बौद्ध धर्म दर्शन में आये इस प्रश्न पर गंभीर विवेचन अपेक्षित है। वस्तुतः बुद्ध ने महिलाओं के धम्म में प्रवेश को लेकर जो शंका जतायी है इसका मूल मनुष्य के क्लेशों व वासनाओं के विश्लेषण में अन्वेषित किया जा सकता है। महात्मा बुद्ध बौद्ध संघ में नैतिकता, अनुशासन व ब्रह्मचर्य की अवधारणा के प्रति अत्यंत सचेत थे एवं मानव स्वभाव की यथार्थता से पूर्णतया भिज्ञ भी थे। संभवतः इसी कारण से संघ में स्त्रियों के प्रवेश को लेकर सशंकित थे। किंतु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि बुद्ध स्त्री जीवन की समस्याओं से अनभिज्ञ थे और समाज में स्त्रियों के प्रति विभेदकारी व्यवहार को स्वीकार करते थे, युक्तियुक्त नहीं होगा। इसका प्रमाण यह है कि समाज में सबसे निम्न माने जाने वाली गणिकाओं तक को संघ में कालांतर में प्रवेश मिला।[३] बौद्ध धर्म ने समाज के उपेक्षित वर्ग से सम्बन्धित स्त्रियों को भी संघ में शामिल किया। समाज में परित्यक्त, विधवा, बन्ध्या व अनेक सामाजिक निरर्हताओं से ग्रस्त स्त्रियों को बौद्ध संघ में प्रवेश मिला। बुद्ध ने बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रति भिक्षुओं के आचरण को भी निर्देशित किया अदर्शन, अलाप एवं मन पर नियंत्रण रखने पर जोर दिया जिससे संघ जीवन की नैतिकता व नियमबद्धता अक्षुण्ण बनी रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारतीय इतिहास व दर्शन जगत में महात्मा बुद्ध एक ऐसे क्रांतिकारी विचारक हुए जिन्होंने प्रचलित परंपराओं के पूर्णतया विपरीत समत्ववादी, बंधुत्ववादी, शांतिवादी, सह-अस्तित्ववादी व मध्यममार्गी विचारों को प्रस्तुत किया। उनके उदारवादी मानवतावादी विचारों के कारण न केवल भारतभूमि वरन् विश्व के अनेक राष्ट्रों में आज भी बौद्ध धर्म व उसके सिद्धांत जीवंत व प्रासंगिक बने हुए हैं।

---

१. जैन और बौद्ध भिक्षुणी संघ, अरूण प्रताप सिंह, १९८६, पृ० १०

२. बुद्धचर्या: राहुल सांकृत्यायन, नयी दिल्ली पंचम संस्करण, २०११ पृ० १५-११७

३. थेरीगाथा (अट्ठकाशी) पृष्ठ - ६४-६६